

बाल-हरिश्चन्द्र



नवयुग 'बाल-साहित्य' माला

बाल-हरिश्चन्द्र

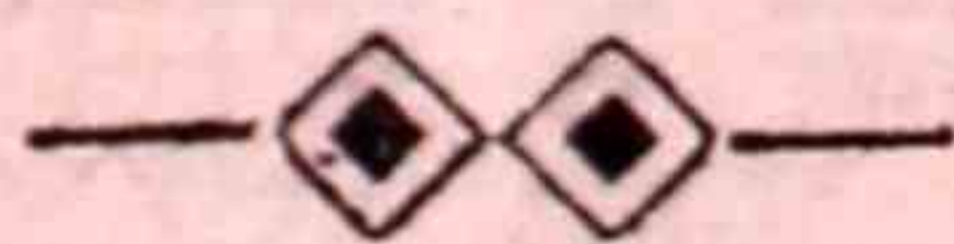
मूल-लेखक---

श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर'

लक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज एम. ए., साहित्यरत्न

द्वारा

छात्रों के लिए पुनःकथित



प्रकाशक

(राजा) रामकुमार-प्रेस, बुकडिपो

उत्तराधिकारी—नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो

लखनऊ.

सन १९५६]

[मूल्य ॥]

इस पुस्तक के सम्बन्ध में

हिन्दी-साहित्य की एक कमी मुझे बहुत दिनों से खटक रही थी। एक तो हिन्दी का बाल-साहित्य यों ही अधूरा है, फिर भी जो कुछ है भी उसमें उपयुक्त पुस्तकों का बड़ा अभाव है। मातृभाषा के अच्छे-अच्छे कवियों, उपन्यासकारों तथा लेखकों की कृतियों का बच्चों के लिए सरल तथा सुबोध भाषा में पुनःकथन (Retelling) बड़ा आवश्यक है। हमारे यहाँ इस ओर किसी ने कदम नहीं उठाया।

हिन्दी-साहित्य की अच्छी-अच्छी पुस्तकों को यदि बालक-बालिकाओं के लिए फिर से लिखा जाय तो यह बाल-साहित्य के सृजन में बड़ा भारी ठोस कार्य होगा। इससे एक बड़ा लाभ तो यह होगा कि छोटी ही अवस्था में हमारे बच्चों का अपने साहित्य के रत्नों से परिचय हो जायगा। आगे चलकर मूल ग्रन्थ को पढ़ने की लालसा उनमें बचपन में ही जाग्रत हो जायगी। और जब कभी वह मूल ग्रन्थ उनके हाथों में आयेगा उन्हें उसके समझने में आसानी होगी।

स्वयं अध्यापक होने के कारण मैंने यह सीरीज विशेषकर स्कूलों में पढ़नेवाले बालक तथा बालिकाओं के लिए शिक्षा-विभाग की प्रेरणा से तैयार किया है। अतएव प्रत्येक पुस्तक के अंत में कुछ प्रश्न तथा 'करने के लिए काम' दिया है। इससे छात्रों और अध्यापकों दोनों ही को इन पुस्तकों के पठन-पाठन में सहायता मिलेगी।

बालक तथा बालिकाओं से

प्यारे बालको तथा बालिकाओं,

महाराज हरिश्चन्द्र का नाम तो तुमने सुना ही होगा। वे अपने प्रण के बड़े पक्के थे और बड़े सत्यवादी थे। सत्य की रक्षा करने के लिए, अपना प्रण पूरा करने के लिए उन्होंने बड़ी कठिनाइयों को भेला। हमारे देश में घर-घर उनकी कथा बड़े चाव से कही व सुनी जाती है।

उनकी इस कथा को स्वर्गीय श्रीजगन्नाथदास “रत्नाकर” ने कविता में लिखा है। वही कथा मैंने संक्षेप तथा सरल करके तुम्हारे लिए इस पुस्तक में लिखी है। जगह-जगह मूल पुस्तक ‘हरिश्चन्द्र’ से कुछ ऐसे उद्धरण भी दिये हैं जो तुम्हारी समझ में आ जायँ। इससे ‘रत्नाकर’ जी की मूल पुस्तक से भी तुम्हारा थोड़ा-बहुत परिचय हो जायगा।

अब तुम इस पुस्तक को पढ़ लो। मैं आशा करता हूँ कि बड़े होने पर आगे चलकर तुम एक-न-एक दिन मूल ‘हरिश्चन्द्र’ अवश्य पढ़ोगे। मूल का रस लेने में तुम्हें इस पुस्तक के पढ़ लेने से बड़ी सहायता मिलेगी।

इस पुस्तक में मूल पुस्तक से जो उद्धरण दिये गये हैं, उनके शब्द-शब्द का अर्थ समझने या रटने की कोशिश न करो। केवल सारांश समझकर उनका आनन्द लो। इनके यहाँ देने से मेरा तात्पर्य तुम्हें मूल की सुन्दरता दिखाने का है।

पुस्तक के अंत में जो प्रश्न दिये हैं उनको भी साथ-ही-साथ करते चलो। पढ़ लेने पर जो तुम्हारे करने के लिए कुछ काम दिया है उसे करना न भूल जाना।

विषय-सूची

पहला सर्ग

नारद-आगमन	१
इन्द्रपुरी में प्रतिज्ञा	

दूसरा सर्ग

पहली परीक्षा	७
काशी-प्रस्थान	

तीसरा सर्ग

काशी में बिके	१५
ऋण से छुटकारा	

चौथा सर्ग

शमशान में	२३
दूसरी परीक्षा	

बाल-हरिश्चंद्र

पहला सर्ग

नारद-आगमन

इन्द्रपुरी में प्रतिज्ञा

बहुत दिन हुए हमारे देश में एक बड़े सत्यवादी राजा हुए थे । उनका नाम था—महाराज हरिश्चंद्र । सरयू नदी के किनारे अयोध्यापुरी उनकी राजधानी थी ।

महाराज हरिश्चंद्र सूर्यवंशी थे । वे मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम-चंद्रजी के कुल में से थे और उनसे पैंतीस पीढ़ी पहले हुए थे । उनके राज्य में प्रजा बड़ी सुखी थी । महाराज बड़े न्यायी, धर्मात्मा और सदाचारी थे । समस्त देश में उनका यश छाया हुआ था । किसी चोर, लुटेरे तथा दुष्ट की इतनी हिम्मत न थी कि किसी की ओर आँख उठाकर देखता । महाराज के प्रताप से घर-घर में आनंद था ।

एक बार नारद मुनि घूमते-फिरते देवलोक के राजा इंद्र की

अवधपुरी अति रम्य परम पावनि मंगलमय ।
 है तिहि को नरनाह भूप हरिचंद्र महासय ॥
 ताही के लखि चरित आज मन मुदित हमारौ ।
 अति अमोघ आनंद परम लघु हृदय बिचारौ ॥
 अहह होत ऐसे नर-रत्न जगत में थोरे ।
 सरल हृदय निष्कपट भाव अविचल-व्रत भोरे ॥

नारद मुनि के मुँह से इन्द्र ने जब महाराज हरिश्चंद्र की यह प्रशंसा सुनी तो उसके हृदय में हरिश्चंद्र के प्रति ईर्ष्या पैदा हो गई, किन्तु अपने मन के भाव को छिपाते हुए उन्होंने मुनि से राजा के चरित्र के विषय में कुछ और पूछ-ताछ की । उत्तर में मुनि ने कहा कि राजा हरिश्चंद्र का चरित्र सब प्रकार से सज्जन पुरुषों का-सा आदर्श चरित्र है ।

अब सुरपति इन्द्र की चिन्ता बढ़ी । उनके मन में भाँति-भाँति की शंकाएँ होने लगीं । उन्होंने नारद मुनि से फिर प्रश्न किया—कहीं राजा हरिश्चंद्र ने स्वर्ग पाने की इच्छा से तो यह कठिन व्रत नहीं ले रक्खा ? मुनि ने राजा इन्द्र की बात को काटते हुए कहा—देवराज ! सज्जन पुरुषों को स्वर्ग की कामना नहीं होती । वे तो अपनी आत्मा के संतोष के लिए ही अपने चरित्र को सुधारते हैं । स्वर्ग की प्राप्ति उनको बड़ी सुगमता से हो जाती है । इसे तो वह औरों को दान कर सकते हैं ।

इन्द्र को मुनि की बात का विश्वास तो हो गया, पर

उन्होंने सोचा कि जब राजा हरिश्चंद्र इतना सत्यवादी है—
इतना दानशील है—तब स्वर्ग का अधिकारी तो वह स्वयं ही



इन्द्र की सभा में नारद मुनि

हो जायगा। यह विचारकर उन्होंने निश्चय किया कि कोई ऐसा उपाय निकालना चाहिए जिससे राजा का व्रत भंग हो जाय। उन्होंने अपना यह विचार नारद मुनि पर प्रकट किया। मुनि को इन्द्र का इतना क्षुद्र हृदय होना अच्छा न लगा। उन्होंने इन्द्र के इस प्रस्ताव को अस्वीकार किया और उसे विविध भाँति से ऊँच-नीच समझाने लगे।

जिस समय यह चर्चा चल रही थी, उसी समय मुनि विश्वामित्र घूमते-फिरते उधर आ निकले। उनके आते ही नारद मुनि ने बिदा माँगी। इन्द्र समझ गये थे कि इनसे मनोरथ पूरा न हो सकेगा। उन्होंने सहर्ष नारद मुनि को बिदा किया। जाते समय नारद मुनि के चेहरे पर क्रोध था।

विश्वामित्र मुनि ने इन्द्र से नारदजी के क्रोधित होने का कारण पूछा। वे बोले—नारद मुनि का स्वभाव तो आप जानते ही हैं। ज़रा-ज़रा-सी बात पर बिगड़ उठते हैं। आज राजा हरिश्चंद्र की प्रशंसाओं के पुल बाँध रहे थे। मैंने सीधे स्वभाव कह दिया कि परीक्षा हो तो माना जाय। बिना तपाए खोटे-खरे सोने की परीक्षा भी तो नहीं होती। बस, मुनिवर इसी पर बिगड़ उठे।

विश्वामित्र मुनि को सुरराज इन्द्र की बातों पर विश्वास आ गया। वे कहने लगे कि यदि आपने इतना ही कहा था

तो नारद मुनि के क्रोधित होने का कोई कारण न था । इन्द्र को उन्होंने सब प्रकार से ठाढ़स बँधाते हुए आगे कहा—

सब संसय परिहरहु परिच्छा हम अब लैहैं ।
निज तप-तेज तचाइ खोलि कलई सब दैहैं ॥
देखौ वेगिहि जौ ताको नवों तेज नसावौ ।
तौ पुनि पन करि कहौ न विश्वामित्र कहावौ ॥

राजा हरिश्चंद्र की परीक्षा लेने की यह प्रतिज्ञा कर मुनि विश्वामित्र शीघ्र ही इन्द्रपुरी से विदा हो गये ।

दूसरा सर्ग

पहली परीक्षा

काशी-प्रस्थान

ऋषि विश्वामित्र इन्द्रपुरी से चलकर अयोध्यापुरी में आये । अयोध्यापुरी की सुन्दरता निराली थी । भाँति-भाँति के बाग-वगीचे थे, जिनमें नाना प्रकार के फूल खिले हुए थे । तालाबों में निर्मल जल हिलोरें ले रहा था । पास ही सरयू नदी कल-कल करती हुई बह रही थी । नगर के सब निवासी

प्रसन्न-चित्त थे । घर-घर में वेद-शास्त्रों की चर्चा हो रही थी ।

यह सुन्दर दृश्य देखकर मुनि विश्वामित्र को बड़ा हर्ष हुआ और वे मन ही मन पछुताने लगे कि मैंने व्यर्थ ऐसे धर्मात्मा



राजा की परीक्षा का प्रण किया । किन्तु अब क्या हो सकता था ? वे तो इन्द्र को वचन दे चुके थे ।

इसी प्रकार सोच-विचार करते हुए ऋषि विश्वामित्र राज-भवन के निकट आ पहुँचे । राजमहल के द्वार पर मणियों के अक्षरों में लिखा हुआ था—

टरहि चंद सूरज औ टरहि मेरु गिरि सागर* ।
टरहि न पै हरिचंद भूप कौ सत्य उजागर ॥

इसका अर्थ यह था कि चाहे सूर्य अपने स्थान से टल जायँ और चाहे चन्द्रमा, सुमेरु पर्वत और सागर अपने धर्म से डिग जायँ, पर राजा हरिश्चन्द्र अपने सत्य से विचलित नहीं हो सकते ।

मुनि विश्वामित्र को आते देखकर द्वारपाल ने महाराज के दरबार में उसके आने की सूचना दी । सुनते ही महाराज उनके स्वागत के लिए द्वार पर आये और प्रणाम करके उनके चरणों को स्पर्श किया और बड़े आदर से उन्हें राजसभा में ले आये ।

राजा से सब प्रकार आदर-सत्कार पाकर महर्षि विश्वामित्र ने कहा—राजन् ! मेरा नाम विश्वामित्र है । मेरे तप की महिमा तुमने सुन ही रखी होगी । अब हम तुम्हारा यश सुनकर तुम्हारे द्वार पर आये हैं और तुम्हारा सारा राज्य दान में माँगते हैं । बोलो, क्या विचार है ।

विश्वामित्र के वचन सुनकर—

कह्यो भूप कत जानि बूझ बूझत मुनि ज्ञानी ।
यामैं सोच-बिचार कहा जौ तुम यह ठानी ॥

* चन्द्र टरै सूरज टरै टरै जगत-व्यवहार ।
पै दृढ़ श्रीहरिश्चंद्र को टरै न सत्य विचार ॥

तुमसौं पाइ सुपात्र दान दबे मैं चूकै ।
तौ यह चूक सदैव आनि उर अंतर हूकै ॥

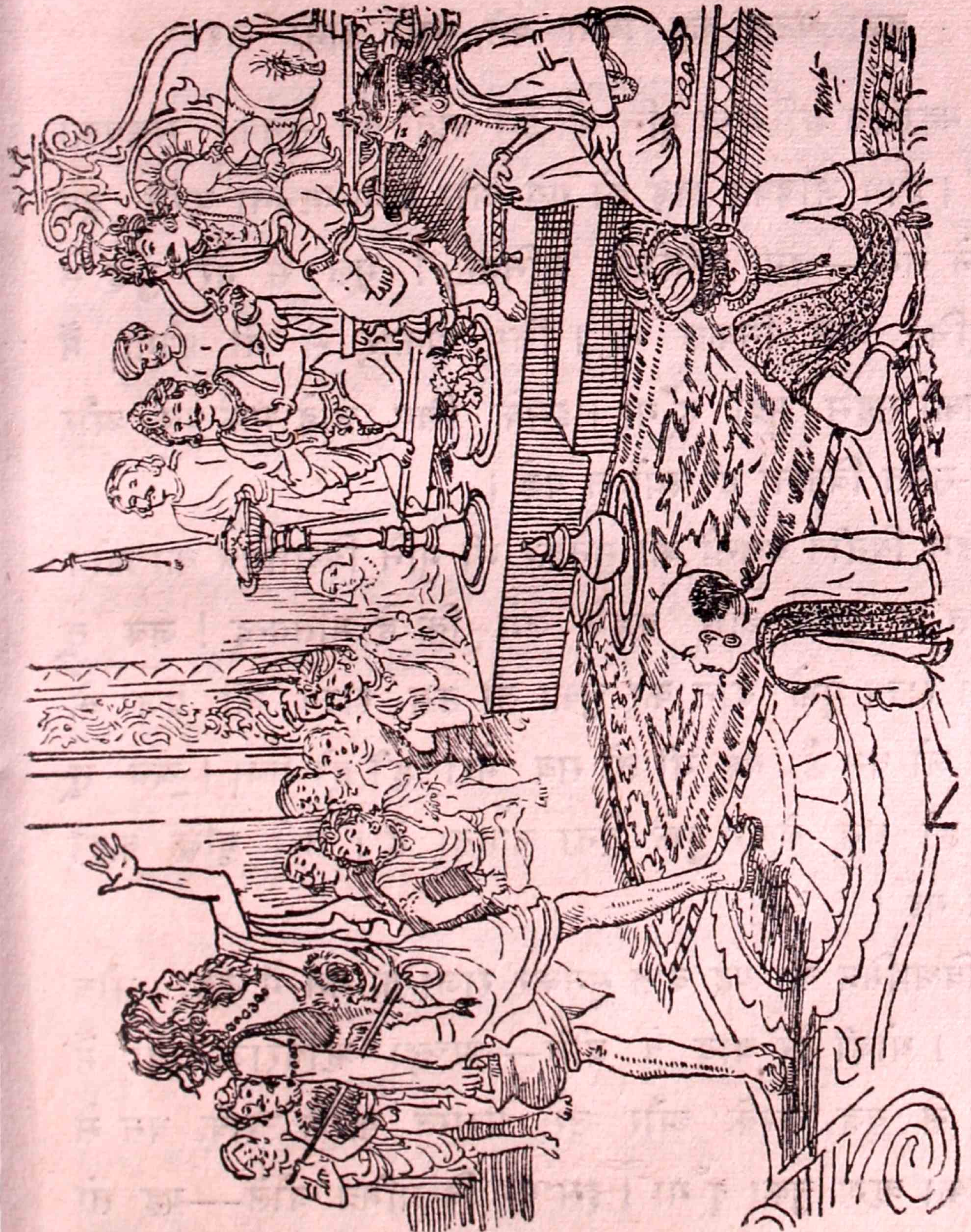
जब राजा ने सहर्ष अपनी सारी पृथ्वी का दान कर दिया तो मुनि ने मन ही मन राजा की दानवीरता की प्रशंसा की और अपने मन में कहने लगे कि राजा को जैसा सुना था सचमुच वैसा ही पाया । अब इसके व्रत को भंग करने का क्या ढंग किया जाय ? कुछ सोच-विचारकर मुनि ने राजा से दान की दक्षिणा माँगी ।

राजा ने हाथ जोड़कर कहा कि जो आपकी इच्छा हो सो ले लीजिए । मुनि बोले—दक्षिणा में बस एक सहस्र स्वर्ण-मुद्रा दे दीजिए । राजा ने “जो आज्ञा” कहकर तुरंत मन्त्री को बुलाकर ऋषि को एक सहस् स्वर्ण-मुद्रा देने को कहा । इतना सुनते ही ऋषि विश्वामित्र बिगड़ खड़े हुए । क्रोध से नेत्र लाल हो गये । बोले—रे पाखण्डी ! धर्म का स्वाँग रचने-वाले मुझे मालूम हो गया कि तू कितना धर्म-ध्वज है, कितना धर्म-धीर और दृढ़प्रतिज्ञ है । झूठ-मूँठ का धर्मात्मा बनकर जगत् में यश कमाया है—

दई दान तैं अब समस्त महि भई हमारी ।
राजकोष कौ अबतैं मूढ़ कौन अधिकारी ॥

जिस राज्य को तू मुझे पहले ही दान कर चुका अब उसके कोष पर ही तेरा क्या अधिकार है ? ‘मन्त्रीजी, राज-

कोष से एक सहस्र स्वर्ण-मुद्रा दिला दीजिए'—इस प्रकार की
आज्ञा देते तुम्हें लज्जा नहीं आती ।



जो बुलाइ मंत्रिहिं ऐसी यह कीन्हि ठिठाई ।
 मुद्रा आनन की आयसु सानन्द सुनाई ॥
 रे मतिमन्द ! अमन्द कुटिल रे कपट-कलेवर ।
 कहा घटत कहु बिना बने ऐसौ दानी नर ॥

महाराज हरिश्चन्द्र मुनि की इन बातों को सुनकर सकपका गये । हाथ जोड़कर खड़े हो गये और क्षमा-याचना करते हुए कहने लगे—क्षमा कीजिए, मुनिवर ! भूल से मेरे मुँह से अनुचित बात निकल गई । जिस प्रकार से भी होगा, मैं आपको सहस्र मुद्रा दूँगा । इसके लिए चाहे मुझे पुत्र और पत्नी-समेत विकना ही क्यों न पड़े ।

इन विनीत वचनों को सुनकर भी मुनि विश्वामित्र का क्रोध शान्त न हुआ और कहने लगे कि हे मतिमन्द ! जब तू सारा राज्य मुझे दान कर चुका तो उस राज्य की प्रजा के पास जो धन है वह भी तो सब मेरा ही हो गया । अब तू मेरा ही धन लेकर मुझे देना चाहता है । तेरी बुद्धि कहाँ मारी गई ।

विश्वामित्र की यह बात सुनकर राजा के मन में बड़ा सोच हुआ । थोड़ी देर बाद वे बोले—अच्छा ऋषिराज ! तो मैं कुबेर से युद्ध करके और उसे परास्त करके उसके धन से आपका ऋण चुका दूँगा । इस पर विश्वामित्र बोले—यह तो बभी कर सकता है न जब कि हम तुझे युद्ध के लिए अस्त्र दे दें ।

राजा ने थोड़ी देर सोचकर फिर कहा—हे मुनिवर !
काशी नगरी तीनों लोक से बाहर है भगवान् शंकरजी महाराज
उसे अपने त्रिशूल पर धरे हुए हैं—

दारा सुअन समेत जाइ हम तहाँ बिकैहैं ।
एक मास की अविधि दयासागर जो दैहैं ॥

उसी काशी नगरी में अपनी रानी तथा पुत्र-समेत बिक
जाऊँगा और आपका ऋण चुका दूँगा । इसके लिए आप
मुझे एक मास की मोहलत दें ।

महाराज हरिश्चन्द्र के मुख से इन वचनों को सुनकर मुनि
विश्वामित्र मन ही मन राजा की प्रशंसा करने लगे उन्होंने
कहा—“जाओ, तुम्हें रुपया चुकाने के लिए एक महीने की
मोहलत दी, पर याद रखो कि यदि तुम एक महीने के अन्दर
ऐसा न कर सके तो शाप देकर तुम्हें तुम्हारे पूर्वजों समेत नरक
भेज दूँगा ।”

राजा ने कहा—जो आज्ञा ।

अब उन्होंने अपने मन्त्रियों तथा अन्य राजकर्मचारियों को
बुलाया और बताया कि आज मैंने अपना सारा राज्य कोष
तथा धन ऋषि विश्वामित्र को दान में दे दिया है । अब तुम
सब लोग आज से इनकी आज्ञा का पालन करना । मैं अपनी
रानी और पुत्र को लेकर काशी जाऊँगा । वहाँ तीनों प्राण
बिक कर ऋषि का ऋण चुकाएँगे ।

इतना कहकर राजा महारानी शैव्या और पुत्र रोहिताश्व को लेकर काशी को चल दिये । कुछ दूर तक उनके मंत्री तथा प्रजा के अनेक लोग नेत्रों से आँसुओं की धारा बहाते हुए



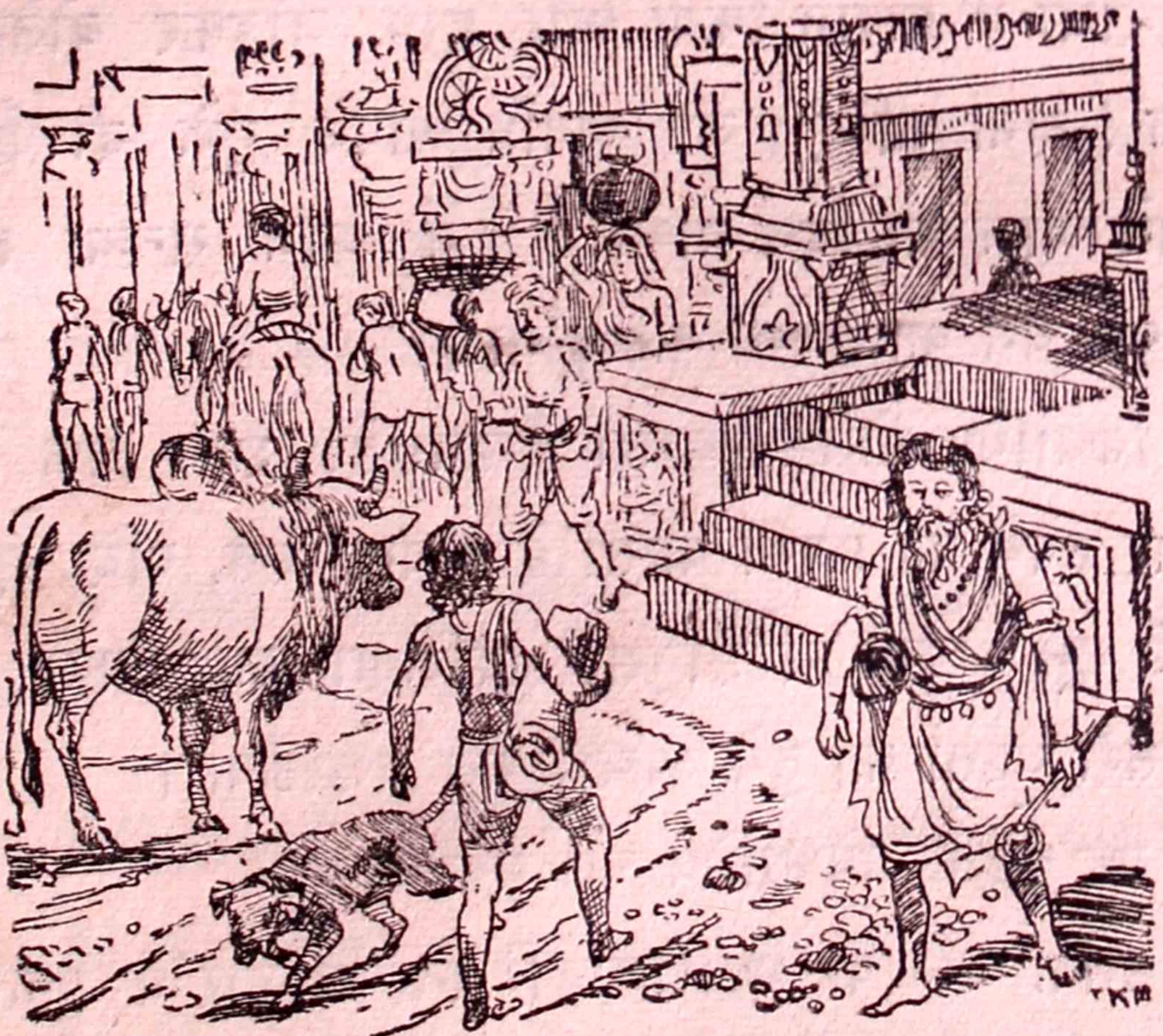
उनके साथ-साथ चले । राजा ने सबको धैर्य दिया और समझाया । अपने महाराज की आज्ञा पालकर सब लोग निराश, दुखी और लुटे हुए से अपने-अपने घरों को लौट आये ।

तीसरा सर्ग

काशी में बिके

ऋण से छुटकारा

काशी में पहुँचकर राजा, रानी और रोहिताश्व, तीनों ने मिलकर थोड़ी देर विश्राम किया। नगर की शोभा को देखकर सब बड़े प्रसन्न हुए। फिर सब बिकने निकले।



जब महाराज महारानी तथा पुत्र-समेत काशी की सड़कों, गलियों और बाजारों में घूम रहे थे और ऐसे लोगों की तलाश

में थे जो उनको मोल ले सकें, उसी समय ऋषि विश्वामित्र आ पहुँचे । क्रोध से उनके नेत्र लाल थे और होठ फड़क रहे थे । आते ही उन्होंने कहा—

अरे भ्रष्ट-प्रन बोलि मास पूखौ कै नाहीं ।

अब विलम्ब केहि हेत दच्छिना दैवे माहीं ॥

अब हम इक छन-मात्र तोहि अवसर नहि दैहैं ।

नैकु न सुनिहैं बात सकल मुद्रा चुकवैहैं ॥

उन्होंने राजा को यह भी धमकी दी कि यदि शीघ्र ही ऋण न चुका दिया गया तो मैं शाप दे दूँगा ।

राजा ने प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले—महाराज ! क्षमा करिए । जो अवधि आपने मुझे दी है, अभी उसमें आज का दिन बाकी है । मैं आज सन्ध्या होते-होते आपके धन का प्रबन्ध कर दूँगा ।

विश्वामित्र बोले—अच्छा देखना है, शाम तक तू कैसे हमारे रुपये का प्रबन्ध करता है ? याद रख, यदि सूर्यास्त से पहले तूने अपनी प्रतिज्ञानुसार दक्षिणा का रुपया न दिया तो तेरी धृष्टता का तुझे अच्छा फल चखाऊँगा ।

यह कहकर विश्वामित्र चले गये ।

उनके जाने पर महाराज हरिश्चन्द्र बाजार में पुकार-पुकार कर लोगों को अपने मोल लेने को बुलाने लगे । महारानी शैव्या ने यह देखकर राजा से हाथ जोड़कर निवेदन किया

कि महाराज हमारे होते हुए पहले आपका बिकना उचित नहीं है—

महाराज ! हम होत बिकन नहिं उचित तिहारौ ।
तातैं प्रथम बैचि हम को ऋन भार निवारौ ॥
जौ एतहु पर चुकै नाहिं सब ऋन ऋषिवर कौ ।
तौ चाहै सो करहु ध्यान धरि उर हरि हर कौ ॥

यह कहकर महारानी शैव्या के नेत्रों में जल भर आया ।
वह पुकार-पुकारकर कहने लगी—

“मुझे मोल लेकर क्या कोई मेरे पति को दुख से छुड़ा सकता है ?”

अपनी माता को इस प्रकार नेत्रों में जल भरकर पुकारते हुए सुनकर बालक रोहिताश्व से न रहा गया । मुरझाये मुख से उदास होकर माँ का अंचल पकड़कर बालक रोहिताश्व ने अपनी तोतली वाणी में माता के रोने का कारण पूछा—

बहुरि तोतरे वचन बोलि आरत उपजैया ।
बूझ्यौ “एँ ये कहा भयो रोवति क्यों मैया” ॥

बालक रोहिताश्व के मुख से जब यह बात सुनी तो महाराज और महारानी का हृदय भर आया । राजा-रानी दोनों के नेत्रों से आँसुओं की धारा बह निकली । रोहित ने जब दोनों को रोते देखा तो वह भी रोने लगा । कभी माता की ओर

देखता, कभी पिता की ओर । पुत्र को इस प्रकार प्रेम से विह्वल होते देखकर महाराज और महारानी ने उठकर उसे हृदय से लगा लिया ।

होते-होते सारे नगर में यह समाचार फैल गया कि एक दास और एक दासी बिकने के लिए बाजार में आये हैं । बहुत से स्त्री-पुरुष इन्हें मोल लेने के उद्देश्य से एकत्र हो गये और मोल-तोल कराने लगे । एक बूढ़े ब्राह्मण ने मोल-भाव करके पाँच सौ स्वर्णमुद्रा देकर शैव्या को ले लिया । अपने पति से विदा होने से पूर्व रानी शैव्या महाराज हरिश्चन्द्र के चरणों पर गिर पड़ी और नेत्रों में नीर भरकर बोलीं—

दरसन हूँ दुर्लभ अब तौ लखि परत तिहारे ।
छूमहुँ भए जो होंहि नाथ अपराध हमारे ॥

महारानी शैव्या के इन वचनों को सुनकर महाराज हरिश्चन्द्र का भी धैर्य छूट गया । उनकी आँखों में आँसू आ गये । किसी प्रकार धीरज धरकर उन्होंने रानी को समझाते हुए कहा—

“जाओ प्राणप्रिये ! जाओ । यह समय धीरज धरने का है । ब्राह्मणदेव की आज्ञा का नित्य पालन करना और ब्राह्मणीजी की भी मन लगाकर प्रीतिपूर्वक सेवा करती रहना । उनके शिष्यों को माता के समान रखना और अपने धर्म की रक्षा करना ।”

जब महारानी शैव्या ब्राह्मण के शिष्य के साथ चलने लगीं तो बालक रोहिताश्व ने माँ का आँचल पकड़ लिया और



अपनी तोतली भाषा में कहने लगा—“पिताजी, माँ कआँ जाती ऐ ? अले माँ को मत ले जा ।”

ब्राह्मण-शिष्य कौडिन्य को चलने की जल्दी थी । उसने

बालक को झटककर एक ओर को ढकेल दिया। बालक गिरकर फूट-फूटकर रोने लगा। महाराज हरिश्चंद्र ने झपटकर उसे उठा धूल पोंछ मुख चूम हृदय से लगा लिया। महारानी शैव्या ने यह देख कौडिन्य से विनती की कि बच्चे को भी साथ ले चले। पहले तो उसने इन्कार किया पर बाद में उसने रानी को ऐसा करने की अनुमति दे दी। शैव्या ने चलते समय मन ही मन पति को प्रणाम किया और ब्राह्मण के घर की ओर चल दी।

इसी समय मुनि विश्वामित्र आ गये। आते ही लाल-लाल नेत्र करके बोले, “ला दे दक्षिणा। अब साँझ होने में देर नहीं है।” राजा हरिश्चंद्र ने उनके पैरों पर गिरकर उन्हें प्रणाम किया। महारानी शैव्या को बेचकर जो धन उन्हें मिला था वह सब उन्होंने ऋषि के अर्पण कर दिया। विश्वामित्र को इतने से संतोष न हुआ। हरिश्चंद्र ने सूर्यास्त के पूर्व ही अपने को बेचकर बाकी दक्षिणा चुका देने का वचन दिया।

महाराज हरिश्चंद्र फिर काशी की सड़कों पर पुकार-पुकार कहने लगे—है कोई ऐसा दयालु जो मुझे मोल लेकर ऋषि-अर्पण से मेरा उद्धार करे? है कोई ऐसा जो मुझे मोल लेकर मैं सब सेवा करने को तैयार हूँ। बड़ा उपकार हो जो कोई मुझे मोल ले ले।

वह थोड़ी ही दूर गये थे कि श्यामकर्ण, छोटे नेत्रों और घुँघरारे केशोंवाला एक आदमी आकर बोला—“हम तुम्हें मोल ले लेंगे।” महाराज हरिश्चन्द्र ने कहा—बड़ा अच्छा है।



परन्तु क्या आप मुझे पहले यह बताने की कृपा करेंगे कि आप कौन हैं और क्या करते हैं ? यह सुनकर—

सो बोल्यो “हम डोम चौधरी मरघटवारे ।
अमल हमारो रहत नदी के दुहूँ किनारे ॥

फूलमती* की पूजन करत कलेस-नसावन ।
 बिना लिए कर कफन देत नहि मृतक जरावन ॥
 धन-तेरस की साँझ और अधिरात दिवाली ।
 नाचि-कूद बलि दै पूजै मसान औ काली ॥
 सोई हम यह सुनो मोल तुमको अब लैहैं ।
 तुरत गाँठ सों खोलि पाँचसौ मोहर दैहैं” ॥

चांडाल के मुँह से जब यह बात सुनी तो महाराज हरिश्चंद्र का हृदय काँप गया । इसके हाथ बिकने से चांडाल का भयानक कर्म करना पड़ेगा । पर क्या करते ? राजा धर्म-संकट में पड़ गये । निदान उन्होंने चांडाल का सेवक बनना ही स्वीकार कर लिया । चांडाल ने मूल्य-स्वरूप पाँच सौ मोहरें दे दीं । उन्हें लेकर विश्वामित्र अपने आश्रम को चले गये ।

ऋषि-ऋण से मुक्त होकर हरिश्चंद्र ने अपने स्वामी चांडाल से पूछा—कहिए, मुझे क्या काम करना पड़ेगा ?

कह्यौ चौधरी “तुम दक्खिन मसान पर जाओ ।
 तहाँ कफन के दान लेन मैं नित चित लाओ ॥
 बिना दिएँ कर मृतक फुकन कबहूँ नहि पावै ।
 धनी रंक राजा परजा कैसहु कोउ आवै” ॥

चौथा सर्ग

श्मशान में

दूसरी परीक्षा

गंगा का किनारा है । वर्षा-काल की घोर अँधेरी रात है ।
कम्बल ओढ़े हुए और हाथ में एक मोटी सी लाठी लिए हुए
हरिश्चन्द्र मसान में अपने स्वामी की सेवा में तत्पर हैं ।
श्मशान का दृश्य बड़ा भयानक है—

कहुँ सुलगति कोउ चिता कहुँ कोउ जाति बुझाई ।
एक लगाई जाति एक की राख बहाई ॥
विविध रंग की उठति ज्वाल दुर्गंधनि महकत ।
कहुँ चरबी सौ चटचटाति कहुँ दह-दह दहकति ॥
कहुँ फूकन-हित धखो मृतक तुरतहि तहँ आयौ ।
पखो अंग अधजखौ कहुँ कोऊ करखायौ ॥
कहुँ स्वान इक अस्थिखंड लै चाटि चिचोरत ।
कहुँ कारी महि काक ठौर सौ ठोकि टटोरत ॥
कहुँ सृगाल कोउ मृतक अंग पर ताक लगावत ।
कहुँ कोऊ सब पर बैठि गिद्ध चट चौंच चलावत ॥
जहँ तहँ मज्जा मांस रुधिर लखि परत बगारे ।
जित तित छिटके हाड़ स्वेत कहुँ कहुँ रतनारे ॥
हरहरात इक दिसि पीपर कौ पेड़ पुरातन ।
लटकत जामै घंट घने माटी के बासन ॥

बरसा ऋतु के काज औरहू लगत भयानक ।
 सरिता बहति सबेग करारे गिरत अचानक ॥
 ररत कहूँ मंडूक कहूँ भिल्ली भनकारै ।
 काकमंडली कहूँ अमङ्गल शब्द उचारै ॥

हरिश्चन्द्र मसान की रखवाली करते हुए मन में सोचते हैं—हाय, विधाता का विधान भी कैसा विलक्षण है ! भगवान् की कैसी माया है ! डोम के दास हुए और मसान की रखवाली का बीभत्स कार्य करना पड़ा । न जाने विधाता का क्रोध इतने पर भी शान्त हुआ है या नहीं । हम क्या-क्या सोचें ? अयोध्या की अनाथ प्रजा का क्या हाल होगा ? नौकरों-चाकरों और दास-दासियों की क्या दशा हुई होगी ? महारानी शैव्या और बालक रोहिताश्व का क्या हाल हुआ होगा ? महारानी शैव्या ! तुम अपने जिन सुकुमार हाथों से फूल की माला भी नहीं गूथ सकती थीं, उनसे बरतन कैसे माँजोगी ? (सँभलकर) खैर, क्या हुआ ? यह तो कोई न कहेगा कि हरिश्चन्द्र ने सत्य छोड़ा ।

इसी प्रकार के सोच-विचार करते हुए राजा पहरा दे रहे थे । अँधेरी रात थी । इसी बीच में श्मशान में अनेक पिशाच और डाकिनीगण आकर एकत्र हो गये । सबकी अत्यन्त डरावनी और विकराल आकृति थी । कोयला जैसा काला शरीर था और लाल-लाल नेत्र । सबके सब जीभ निकाले हुए

थे । सब इधर-उधर दौड़ते और किलकारी मारकर परस्पर
क्रीड़ा करते थे ।

कोउ कड़ाकड़ हाड़ चाबि नाचत दै ताली ।

कोउ पीवत रुधिर खोपरी की करि प्याली ॥

कोउ अँतड़िनि की पहिर माल इतरात दिखावत ।

कोउ चरबी लै चोपि सहित निज अंगनि लावत ॥

कोउ मुंडनि लै मानि मोद कंदुक लौं डारत ।

कोउ मुण्डनि पै बैठि करेजौ फारि निकारत ॥

कोई कटाकट हड्डी चबा रहा है, कोई खोपड़ियों में लहू
भर-भर के पीता है, कोई अँतड़ियों की माला बनाकर पहनता
है और कोई सिरों की गेंद बनाकर खेलता है । कोई चन्दन
की भाँति चरबी और लोहू शरीर में पोत रहा है । एक दूसरे
से मांस छीनकर ले भागता है । हँसी में परस्पर लोहू का कुल्ला
करते हैं और मुद्दों के अंगों को ले-लेकर नाचते हैं । क्रोध में आने
पर श्मशान के कुत्तों को पकड़-पकड़कर खा जाते हैं । सबको
देखकर ऐसा मालूम होता है, मानो भयानक रस की सेना
मूर्तिमान् होकर यहाँ स्वच्छन्द विहार कर रही है ।

आधी रात बीत चुकी । वर्षा के कारण अँधेरी बहुत ही
छा रही है । हाथ से हाथ नहीं सूझता । धीरे-धीरे पौ फटने
का समय आ गया । अचानक राजा को अपशकुन होने
लगे । बाई आँख फड़कने लगी । अनायास ही हृदय भ

धड़कने लगा । इन अपशकुनों का कारण क्या ? राजा विचार करने लगे कि क्या होनहार है ? जो होना था सो हो ही चुका । केवल एक मरना ही शेष है । सहसा राजा को आकाश से सुनाई पड़ा—

“पुत्र हरिश्चंद्र ! सावधान ! यही अन्तिम परीक्षा है । इक्ष्वाकु से लेकर त्रिशंकु तथा तुम्हारे पुरुषा आकाश में नेत्रभरे खड़े एकटक तुम्हारा मुख देख रहे हैं । आज तक इस वंश में ऐसा कठिन दुख किसी ने नहीं सहा । तुमने जैसा धैर्य अब तक रखकर अपने धर्म का पालन किया है, वैसा ही अब भी करना । ऐसा न हो कि तुम्हारे पुरुषाओं का सिर नीचा हो । धैर्य रक्खो और अपने कर्तव्य का स्मरण करो ।”

इतने ही में राजा को किसी के रोने का शब्द सुनाई दिया । कोई स्त्री मुरदा लेकर आई थी और विकल हो-होकर विलाप कर रही थी । दुखिया का करुणा से भरा विलाप सुनकर छाती दहलती थी ।

कहति पुकारि पुकारि “वत्स मैया मुख हेरौ ।
वीर पुत्र हूँ ऐसे कुसमय आँखि न फेरौ ॥
हाय हमारौ लाल लियौ इमि लूटि बिधाता ।
अब काको मुख जोहि मोहि जीवै यह माता ॥
पति त्यागैं हूँ रहे प्रान तब छोह सहारे ।
सौ तुमहूँ अब हाय बिपति में छाँड़ि सिधारे ॥
अबहिँ साँझ लौं तौ तुम रहे भली बिधि खेलत ।

औंचकहीं मुरझाइ परे मम भुज मुख मेलत ॥
 हाय न बोले बहुरि इतोही उत्तर दीन्ह्यौ ।
 'फूल लेत गुरु हेत साँप हम कौं डसि लीन्ह्यौ' ॥
 गयो कहाँ सो साँप आनि क्यों मोहि डसत ना ।
 अरे प्रान किहि आस रह्यौ अब बेगि नसत ना ॥
 कबहुँ भाग-बस प्राननाथ जो दरसन दैहैं ।
 तौ तिनकौं हम बदन कहौ किहि भाँति दिखैहैं ॥
 हाय बत्स किन सुनि पुकार मैया की जागत ।
 अरे मरे हूँ पै तुम तो अति सुन्दर लागत" ॥

इस भाँति विलाप करती हुई वह स्त्री कभी मरे हुए बालक
 के शव को उठाकर छाती से लगाती थी, कभी उसके मुख
 को चूमती थी और कभी उसे गोद में बिठाती थी ।

उसका विलाप सुनकर हरिश्चन्द्र अपने मन में कहने
 लगे—अहह ! यह किसी दीन स्त्री का शब्द है, जिसका पुत्र
 उसे छोड़कर परलोकवासी हुआ है । हाय ! हाय ! इस बेचारी
 के पति ने भी इसको छोड़ दिया है । इसका विलाप सुनकर
 तो कलेजा फटा पड़ता है । हमारा भी कैसा बीभत्स कर्म है ।
 इससे भी वस्त्र माँगना पड़ेगा ।

इधर राजा के मन में यह विचार उठ रहे थे, उधर वह
 दुखिया विलाप करती हुई कह रही थी—

पुत्र ! तोहि लखि भाषतहे सब गुनि औ पंडित ।
 हूँ है यह महाराज भोगिहै आयु अखंडित ॥

तिनके सो सब वाक्य हाय प्रतिकूल लखाये ।
 पूजा पाठ दान जप तप सब वृथा जनाये ॥
 तव पितु को दृढ़-सत्य-व्रतहु कछु काम न आयौ ।
 बालपनेहिं मैं मरे जथाविधि कफन न पायौ ॥

इन वाक्यों को सुनते ही राजा के भाव बदलने लगे ।
 “तुम्हारे बाप का कठिन पुण्य भी तुम्हारे काम न आया और
 तुम चल बसे” — यह शब्द सीधे महाराज के हृदय पर जाकर
 लगे । शंका पर शंका होने लगी । अनायास ही उन्हें अपने
 पुत्र रोहिताश्व का स्मरण हो आया ।

एतहि में रोवत-रोवत सो बिलख पुकारी ।
 “हाय आज कौंसिक*पूरी सब आस तुम्हारी ॥”
 यह सुनि एकाएक भई धक सों नृप छाती ।
 भरी भराई सुरंग माहिं लागी जनु बाती ॥

“भगवन् विश्वामित्र ! आज तुम्हारे सब मनोरथ पूरे
 भये” — इस वाक्य ने हरिश्चन्द्र की शंकाओं को और भी
 बढ़ा दिया । घबड़ाकर उनकी छाती धक-धक करने लगी ।
 बारूद से भरी सुरंग जैसे आग लगने से उड़ जाती है, वैसे
 ही उनका धैर्य छूट गया । घबड़ाकर बालक की माता के
 निष्कट आये । भली भाँति दोनों को देखा तो राजा का —

धीरज उड़्यौ धधाइ धूम दुख कौ घन छायौ ।

भयौ महा अंधेर न हित-अनहित दरसायौ ॥

विविध गुनावन महा मर्मवेधी जिय जागें ।

“हाय पुत्र ! हा रोहिताश्व !” कहि रोवन लागे ॥

हरिश्चन्द्र ने पहचान लिया कि दुखिया स्त्री और कोई नहीं उनकी रानी, रोहिताश्व की माता शैव्या है । मरा बालक भी उन्हीं का पुत्र रोहिताश्व था । दुख से विकल होकर राजा एक ओर को हटकर विलाप करने लगे—“हा पुत्र रोहिताश्व ! हा लाल ! हा सूर्यवंश के अंकुर ! हा हरिश्चन्द्र के एकमात्र अवलम्बन ! तुम ऐसे कठिन समय में दुखिया माता को छोड़कर कहाँ चले गये ? न-जाने मेरे किस जन्म के पाप उदय हुए कि यह दारुण दुख देखना पड़ा ! निस्सन्देह मैं बड़ा अभागा और पातकी हूँ । महारानी शैव्या के सम्मुख क्या मुख लेकर जाऊँगा ? हा निर्लज्ज प्राण ! तुम अब भी क्यों नहीं निकलते ? हा ! वज्रहृदय, इतने पर भी तू क्यों नहीं फटता ? रानी को मुँह दिखाने के पहले ही यह उचित है कि प्राण-त्याग कर दूँ । गले में फाँसी लगाकर मर जाऊँ ।”

यह विचारकर राजा पीपल के पेड़ के पास पहुँचे । दो बर्तनों को खोलकर उनकी डोरी को पेड़ से बाँधकर फंदा बना लिया । इस फन्दे को गले में लगाकर ज्यों ही कूदना चाहते थे कि हृदय में विचार आया कि अरे ! यह मैंने

कितनी अनुचित बात विचारी है ! जिस अपनी देह को मैंने दूसरे के हाथों बेच चुका, उस पर मेरा क्या अधिकार है, जो इस प्रकार प्राण त्यागने चला हूँ । हे अंतर्दामी भगवान्, क्षमा करना । मुझसे बड़ा अपराध हुआ । दुख में मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती । अब तो मैं अपने स्वामी डोम का दास हूँ । न शैव्या मेरी स्त्री है और न रोहिताश्व मेरा पुत्र । चलूँ, अपने स्वामी के कार्य पर सावधान हो जाऊँ और कफन का कर लेकर अपने धर्म का पालन करूँ ।

यह सोचकर राजा फिर शैव्या के पास आकर खड़े हो गये । रानी पहले ही की तरह अब भी विलाप कर रही थी—

“हा पुत्र ! अब मैं किसका मुँह देखकर संसार में जिऊँगी ? कौन मुझे ‘मैया’ कहकर पुकारेगा ? हाय ! खेलते-खेलते आकर कौन मेरे गले में लिपट जायगा ? मैं अब किसको अपने आँचल से मुँह की धूल पोंछकर गले लगाऊँगी ? हाय ! जब रोहिताश्व ही नहीं तो मैं ही जीकर क्या करूँगी ? इसी क्षण प्राण दे दूँगी । चलूँ, या तो इस पेड़ में फाँसी लगाकर मर जाऊँ या गङ्गा में कूदकर प्राण दे दूँ ।”

यों कह अकुलाकर रानी ज्यों ही प्राण देने चली, राजा धीरज धरकर आड़ में से गम्भीर वाणी में बोले—

बेचि देह दासी हूँ तब तौ धर्म समहाय्यौ ।
अब अधरम क्यों करति कहा यह हृदय विचाय्यौ ॥

या तन पै अधिकार कहा तुमकोँ सोचौ छिन ।
जानि बूझि जो मरन चलीं स्वामी आयसु बिन ॥*

रानी के कान में ज्योंही यह शब्द पड़े त्योंही वह चौकन्नी होकर सोचने लगी कि यह कौन है जिसने कठिन समय में धर्म का यह उपदेश दिया । सच है, मैं अब इस देह की कौन हूँ जो यों मर सकूँ ? मरकर दुःख से छूटना विधाता ने भाग्य में लिखा ही नहीं । चलूँ, वज्र का कलेजा करके मृत पुत्र की अंतिम क्रिया करूँ ।

इस प्रकार विलाप करते-करते रानी पुत्र की चिता के लिए लकड़ियाँ चुनने लगी । रोहिताश्व का शव उठाकर उस पर रखने ही वाली थी कि राजा ने आँसुओं को रोककर कलेजा थामकर धीरज धरके आगे बढ़कर कहा—महाभाग !

“हे मसानपति की आज्ञा कोउ मृतक फुकै ना ।
जब लौं फूकनहार कफन आधौ कर दै ना ॥”
देवी, तुम भी पहले हमें कपड़ा दे लो, तब क्रिया करो ।
कपड़ा लेने के लिए राजा ने ज्यों ही हाथ फैलाया त्यों ही आकाशवाणी हुई—

* तनहिबेचि दासी कहवाई । मरत स्वामिआयसु बिन पाई ॥

करु न अथर्म सोच जिब माहीं । पराधीन सपने सुख माहीं ॥

—भारतेन्दु

“धन्य धैर्य बल सत्य दान सब लसत तिहारे ।
अहो भूप हरिचंद सकल लोकन ते न्यारे ॥



“धन्य हरिश्चन्द्र ! धन्य हरिश्चन्द्र” जब यह शब्द शैव्या

ने सुने तो वह चकित होकर इधर-उधर देखने लगी और मन ही मन सोचने लगी कि हाय ! इस कुसमय में आर्यपुत्र की यह कौन स्तुति करता है ? यह स्तुति क्या है ? शास्त्र आदि केवल देवताओं और ब्राह्मणों के पाखण्ड हैं । नहीं तो क्या आर्यपुत्र-जैसे धर्मात्मा की यह गति हो !

हरिश्चन्द्र बोले—“महाभागे, ऐसा मत कहो । शास्त्र, ब्राह्मण और देवता तीनों काल में सत्य हैं । ऐसा कहोगी तो अधर्म होगा । यह सब अपने ही कर्मों का दोष है । लाओ, कर लाओ । विलंब होता है । शीघ्र क्रिया करो और अपने घर चली जाओ ।”

यह कहकर महाराज हरिश्चन्द्र ने कफन लेने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया । रानी ने उनके हाथ में चक्रवर्ती का चिह्न देखकर और कुछ स्वर और कुछ आकृति से राज को पहचान लिया । वह उनके चरणों पर गिर पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी—

कह्यो हुचकि “हा नाथ ! हमैं ऐसो बिसरायौ ।
कहाँ हुते अब लौं कबहूँ नहिं बदन दिखायौ ॥
हाय आपने प्रिय सुत की यह दशा निहारौ ।
लूटि गई हम हाय करहिं अब कहा उचारौ ॥

राजा ने रानी को उठाया और विविध भाँति से उसे समझाकर कहने लगे—प्रिये ! धीरज धरो । यह रोने-पीटने

का समय नहीं है। देखो, सबेरा होना ही चाहता है। कोई आ जायगा तो हम लोगों को पहचान लेगा। लज्जामात्र बच गई है, वह भी चली जायगी। चलो हमें कफन देकर क्रिया करो।

यह सुनकर शैव्या ने विलखकर कहा—

अंचल फारि लपेटि मृतक फूँकन ल्याई हैं।
 हा ! हा ! एती दूर बिना चादर आई हैं ॥
 दीन्हैं कफनहिं फारि लखहु सब अंग खुलत हैं।
 हाय ! चक्रवर्ती का सुत बिन कफन फुकत है ॥

नाथ ! मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं है। आँचल फाड़कर इसे लपेट लाई हूँ। यदि कफन फाड़कर देती हूँ तो पुत्र की लाश खुली रह जायगी। हाय ! चक्रवर्ती के पुत्र को आज कफन तक नहीं मिलता।

बलपूर्वक अपने आँसुओं को रोककर महाराज हरिश्चन्द्र ने कहा—प्रिये ! रोओ मत। मैं पराया दास हूँ, इस कारण विवश हूँ। स्वामी की आज्ञानुसार बिना कफन का कर लिये दाहक्रिया न होने दूँगा। राज्य देकर और तुमको बेचकर जिस धर्म को आज तक रक्खा है, उसे एक टुक कपड़े के लिए न छुड़ाओ। विपत्ति-काल में ही धीरज और धर्म रखना चाहिए। कफन का कर दो। सबेरा हुआ ही चाहता है।

राजा की यह बात सुनकर शैव्या ने कहा—“अच्छा नाथ ! जैसी आपकी आज्ञा ।” रोहिताश्व का कफन फाड़ने के लए ज्यों ही उसने अपना हाथ आगे को बढ़ाना चाहा कि पृथ्वी हिल उठी । बड़ा घोर शब्द हुआ । एक साथ अनेक बाजे बजने लगे । चारों ओर बिजली का-सा प्रकाश छा गया । ‘जय-जय’ की ध्वनि होने लगी और आकाश से फूल बरसने लगे । इसी समय भगवान् नारायण ने प्रकट होकर महाराज हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लिया और कहा—

“बस महाराज बस, धर्म और सत्य की परीक्षा हो चुकी । देखो तुम्हारे पुण्य-भय से पृथ्वी बारम्बार काँपती है । अब त्रैलोक्य की रक्षा करो ।”

महाराज हरिश्चन्द्र ने भगवान् को साष्टांग दंडवत् करके रोते हुए गद्गद स्वर से कहा—“भगवन् ! मेरे वास्ते आपने इतना परिश्रम किया । कहाँ यह श्मशान-भूमि कहाँ मेरा मनुष्य-शरीर और कहाँ साक्षात् आप ?”

इतना कहकर राजा का गला भर आया । तब नारायण ने शैव्या और रोहिताश्व की ओर देखकर कहा—“पुत्री, अब सोच मत कर । धन्य तेरा सौभाग्य कि तुझे राजा हरिश्चन्द्र ऐसा पति मिला है । वत्स रोहिताश्व उठो । तुम्हें सोते हुए बहुत देर हो गई । तुम्हारे माता-पिता तुमसे मिलने को व्याकुल हो रहे हैं ।”

एतौ कहतहि भयौ तुरत उठि कै सो ठाढ़ौ ।
 जैसे कोऊ उठत बेगि तजि सोवन गाढ़ौ ॥
 लग्यो चकित ह्वै चारहुँ ओर बिस्मय देखन ।
 कबहुँ मातु अरु कबहुँ पिता कौ बदन निरेखन ॥
 नारायन कौं लखि प्रनाम पुनि सादर कीन्ह्यौ ।
 मात-पिता के बहुरि धाय चरननि सिर दीन्ह्यौ ॥

रोहिताश्व के खड़े होते ही आकाश से फिर फूलों की वर्षा हुई । हरिश्चन्द्र और शैव्या का हृदय यह सब दृश्य देखकर आश्चर्य, आनन्द और करुणा से भर गया । प्रेम के कारण उन्हें कुछ कहते नहीं बनता था । दोनों के नेत्रों से आँसू बहते थे और दोनों एकटक भगवान् के मुखारविन्द की ओर देखते थे ।

थोड़ी ही देर में श्रीमहादेव, पार्वती, भैरव, धर्म, इन्द्र और



विश्वामित्र भी वहाँ आ गये । सब अपनी-अपनी मति के अनुसार महाराज हरिश्चन्द्र और महारानी शैव्या की प्रशंसा करने लगे । महाराज, महारानी और रोहिताश्व ने सबको सिर नवाकर वंदना की । मुनि विश्वामित्र नेत्रों में जल भरकर बोले—महाराज, मुझे क्षमा कीजिए । मैंने आपकी परीक्षा लेने के लिए ही आपके साथ यह सब छल किया था । आपका यश आपके प्रताप के कारण चारों दिशाओं में छा गया है । आप अपना राज्य वापस ले लीजिए ।

इसके बाद बारी-बारी से सभी देवताओं ने महाराज हरिश्चन्द्र की कीर्ति का बखान करते हुए आशीर्वाद दिया । तत्पश्चात् देवराज इन्द्र ने लज्जा से नीचे नयन कर हाथ जोड़कर कहा—

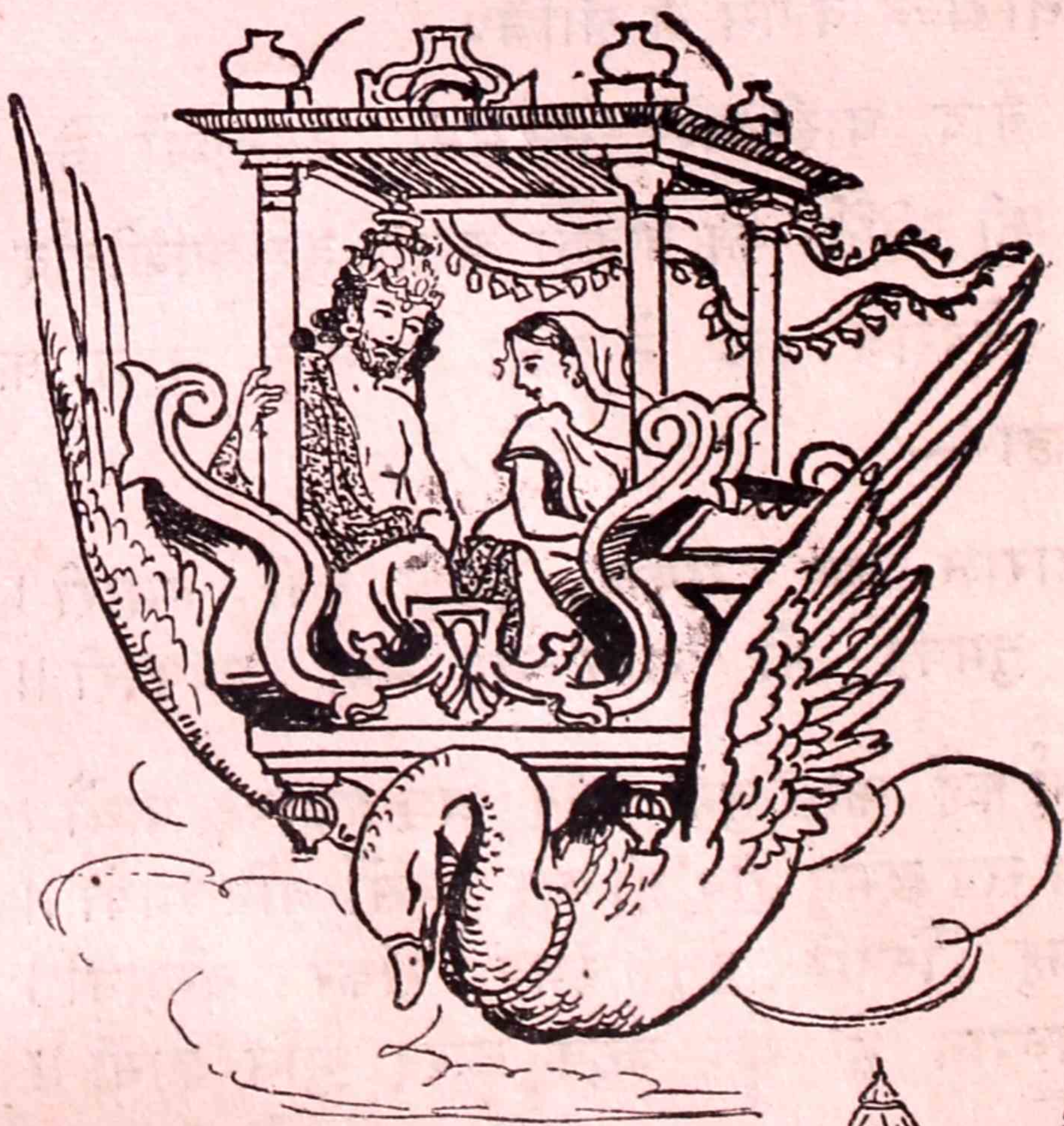
महाराज यह सकल दुष्टता हुती हमारी ।
पै तुमको तौ सोऊ भई महा उपकारी ॥

स्वर्ग कहै को ? तुम अति श्रेष्ठ ब्रह्म-पद पायौ ।
अब सब छमहु दोष जो कछु हमसौं बनि आयौ ॥
लखहु तिहारे हेतु स्वयं संकर बरदानी ।
उपाध्याय हूँ बने बटुक नारद मुनि ज्ञानी ॥

बन्यौ धर्म आपहि तुम हित चंडाल अधोरी ।
बन्यौ सत्य ताकौ अनुचर यह बात न थोरी ॥
बिके न तुम नहिं भए दास यह उर निरधारौ ।
हरि इच्छा सौं इहि बिधि बाढ्यौ मुजस तिहारौ ॥

जब इन्द्र अपना कथन समाप्त कर चुके तो नारायण ने प्रसन्न होकर कहा—“हरिश्चन्द्र, जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो सो वर माँग लो।” हरिश्चन्द्र प्रणाम करके गद्गद स्वर से बोले—“प्रभो, आपके दर्शन से सब इच्छा पूर्ण हो गई तथापि आपकी आज्ञानुसार यह वर माँगता हूँ कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ वैकुण्ठ जाय।”

भगवान् ने कहा—“एवमस्तु”



यौ कहि पत्नी संग नृपहि नर-अंगनि धारे ।
 रोहिताश्व कौ सौंपि राज्य सब धर्म सहारे ॥
 निज बिमान बैठाइ बेगि बैकुंठ पधारे ।
 भई पुष्पवर्षा सब जय-जय सब्द उचारे ॥

प्रश्न

पहला सर्ग

- (१) देवराज इंद्र को हरिश्चन्द्र का चरित्र सुनकर क्यों चिन्ता हुई ?
- (२) नारदजी के सम्मुख इंद्र ने क्या प्रस्ताव रक्खा ?
- (३) नारदजी ने उसे क्या कहकर टाल दिया ?
- (४) कौन इस कार्य को करने को तैयार हो गये ?

दूसरा सर्ग

- (१) महाराज हरिश्चन्द्र का क्या प्रण था ?
- (२) उनसे विश्वामित्र मुनि ने दान में क्या माँगा ?
- (३) दक्षिणा में क्या माँगा ?
- (४) दक्षिणा चुकाने के लिए मुनि ने राजा को कितने दिन की अवधि दी ?

तीसरा सर्ग

- (१) काशी में शैव्या को किसने मोल लिया ?
- (२) हरिश्चन्द्र किसके हाथों बिके ?
- (३) हरिश्चन्द्र को क्या-क्या सौंपा गया ?

चौथा सर्ग

- (१) रोहिताश्व की मृत्यु कैसे हुई ?
- (२) रानी ने महाराज हरिश्चन्द्र को कैसे पहचाना ?
- (३) हरिश्चन्द्र ने भगवान् से क्या वरदान माँगा ?
- (४) उन्हें अपने सुकर्मों का क्या फल मिला ?

करने के लिए कुछ और काम

१—याद करने के लिए—

इस पुस्तक में मूल हरिश्चन्द्र से जगह-जगह कुछ अवतरण उद्धृत किये गये हैं। इनमें से तुम्हें जो अच्छे लगें उन्हें अपनी कापी में लिखकर बाद में प्रसंग-सहित जबानी याद कर लो।

अच्छे अवतरणों की छाँट में तुम्हारे अध्यापक तुम्हारी सहायता करेंगे।

२—नीचे लिखे स्थलों का प्रसंग बताओ—

(१) सब संसय परिहरहु परिच्छा हम अब लैहैं।

निज तप-तेज तचाइ खोलि कलई सब दैहैं॥

(२) “दई दान तैं अब समस्त महि भई हमारी।

राजकोष कौ अब तैं भूढ़ कौन अधिकारी”॥

(३) दरसनहु दुर्लभ अब तो लिख परत तिहारे।

छमहु भए जो होहिं नाथ अपराध हमारे॥

(४) बेचि देह दासी हूँ तब तौ धर्म सम्हाख्यौ।

अब अधरम क्यों करति कहा यह हृदय बिचाख्यौ॥

या तन में अधिकार कहा तुमकौं सोचौ छिन।

जानि बूझि जो मरन चली स्वामी आयसु बिन॥

(५) कह्यौ हुचकि “हा नाथ हमैं ऐसो बिसरायौ।

कहाँ हुते अबलौं कबहूँ नहिं बदन दिखायौ॥

हाय आपने प्रिय सुत की यह दशा निहारौ।

लूटि गई हम, हाय करहिं अब कहा उचारौ॥”

(६) महाराज यह सकल दुष्टता हुती हमारी।

पै तुमकौं तौ सोऊ भई महा उपकारी॥

३—इस पुस्तक में श्मशान का बड़ा अच्छा वर्णन किया गया है । इसी के आधार पर तुम भी श्मशान का वर्णन लिखो ।

४—पढ़ने के लिए—

भारतेंदु हरिश्चन्द्र हिंदी के एक बड़े कवि और लेखक हुए हैं । उन्होंने इस कथा को नाटक के रूप में लिखा है । उनके नाटक का नाम है—

“सत्य हरिश्चन्द्र नाटक”

अपने स्कूल के पुस्तकालय से या किसी मित्र अथवा संबंधी से इस नाटक को माँगकर पढ़ो ।

इस नाटक का बहुत-सा अंश अभी तुम्हारी समझ में न आवेगा, किन्तु उसका सार तो तुम अब भी समझ लोगे ।

सामाजिक शिक्षा के अंतर्गत शिक्षित प्रौढ़ों

तथा

छात्र-छात्राओं के पढ़ने योग्य सहायक पुस्तकें

नल-दमयन्ती	I=)	बाल-गंगावतरण	II)
सावित्री-सत्यवान्	I)	बाल-शेक्सपियर	II)
देश-देश की कहानियाँ		बाल-कादम्बरी	II)
प्रथम भाग	II)	बाल-जवाहरलाल नेहरू	2II)
बाल-हितोपदेश	I=)	बाल-रामायण	3)
बाल-हरिश्चन्द्र	II)	सुबोध पंचतंत्र	1II)
महारानी पद्मिनी	II)	बाल-पृथ्वीवल्लभ	1I)
बाल-महाभारत	II)	बाल-सोमनाथ	1I)
बाल-शकुन्तला	I)	बाल-लोमहर्षिणी	1I)
बाल-जयद्रथवध	I)		
बाल-सुदामाचरित्र	I=)	बाल-परशुराम	1I)
देश-देश की कहानियाँ		बाल-कथाकौमुदी	II=)
द्वितीय भाग	II)	प्यारी कहानियाँ	II=)

बाल रवीन्द्रनाथ

कवि-सम्राट् स्वर्गीय श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर की चार सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ सरल भाषा में पुनःकथित हैं। प्रत्येक कहानी में चित्र और साथ में कवीन्द्र रवीन्द्र का संक्षिप्त परिचय भी है। मूल्य 1II) डेढ़ रुपया।

मिलने का पता

(राजा) रामकुमार बुकडिपो

हजरतगंज, लखनऊ.

मुद्रक—श्रीमुन्नूलाब्द श्रीवास्तव (राजा) रामकुमार प्रेस, लखनऊ